International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 38-42

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 38-42
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-01-2017
Accepted: 16-03-2017

राजेश कुमार
शोधच्छात्रए एम.फिल (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.

अंगिरस
शोधच्छात्रए एम.फिल (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.

Correspondence
राजेश कुमार
शोधच्छात्र एम.फिल (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.

यज्ञ द्वारा आयुर्वृद्धि : एक समीक्षात्मक अध्ययन

राजेश कुमार, अंगिरस

प्रस्तावना

यज्ञ शब्द का अर्थ 'यज्' धातु से 'यज्-याच्-यत्-विच्छ्-प्रच्छ-रक्षो नङ्'[1] सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय करने पर 'यज्ञ' शब्द बना है। 'नङन्तः' इस पाणिनीय लिङ के अनुशासन से 'यज्ञ' शब्द पुल्लिंग भी होता है। 'नङ्' प्रत्यय भाव अर्थ में है। किन्तु 'कृत्यल्युटो बहुलम्'[2] इस सूत्र पर 'बहुलग्रहणं कृन्मात्रस्यार्थ व्यभिचारार्थनम्' सिद्धान्तानुसार कृदन्त से सभी प्रत्ययों का अर्थ परिवर्तित किया जा सकता है। जिस सदनुष्ठान द्वारा संसार का कल्याण हो उसे यज्ञ कहते हैं। जिस सदनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक विपत्तियाँ दूर हो उसे यज्ञ कहते हैं। जिस सदनुष्ठान द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति सुलभ हो उसे यज्ञ कहते हैं। निरुक्तकार आचार्य यास्क यज्ञ के विषय में कहते हैं-

यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः। याच्ञो भवतीति वा यजुर्भिरुन्नो भवतीति वा, बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः यजूष्येनं नयन्तीति वा।।[3]

यज्ञ क्यों कहलाता है? 'यत्' धातु का अर्थ देवपूजा है यह लोक और वेद में प्रसिद्ध है ऐसा आचार्य यास्क मानते हैं, अथवा जिस कर्म में लोग यजमान से अन्नादि की याचना करते हैं, अथवा यजमान ही देवी-देवताओं से अपने इष्ट की प्रार्थना करता है, इस कर्म को 'यज्ञ' कहते हैं।

'जिस कर्म-विशेष में देवता, हवनीय द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज् और दक्षिणा इन पाँचों का संयोग हो, उसे यज्ञ कहते हैं।'[4] शतपथब्राह्मण के अनुसार सकल जगत् का सबसे 'श्रेष्ठतम कर्म' यज्ञ है।[5]

सायण के अनुसार यज्ञ - देवता विशेष के लिए अग्नि में हव्य पदार्थों का त्याग करना 'यज्ञ' कहलाता है।[6]
महर्षि दयानन्द सरस्वती - अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में लिखते हैं कि यज्ञ का अर्थ परमात्मा भी होता है। 'यज्ञो वै विष्णुः' जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता है और सब विद्वानों का पूजनीय है। "यो यजति विद्वद्भिरिष्यते वा स यज्ञः" और ब्रह्मा से लेकर सब ऋषियों-मुनियों का पूजनीय था, है और रहेगा। अतः उस परमात्मा का नाम यज्ञ है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।[7]
महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यज्ञ उसको कहते हैं, जिसमें निम्नलिखित चार गुण विद्यमान हो-

1. विद्वानों का सत्कार।
2. यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग।
3. विद्यादि शुभगुणों का दान।
4. अग्निहोत्रादि जिसमें वायु, वृष्टिजल, औषधि को पवित्र करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको मैं उत्तम यज्ञ समझता हूँ।[8]

आर्योद्देश्यरत्नमाला में स्वामी दयानन्द कहते हैं कि "जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त अथवा जो

शिल्प-व्यवहार और जो पदार्थ-विद्वान् है, जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं।[9] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- "यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म"[10] अर्थात् यज्ञ विश्व का श्रेष्ठतम कर्म है।

निरुक्तकार आचार्य यास्क के अनुसार - यज्ञ को महान् देव भी माना गया है- "महादेव इति एव हि महान् देवो यद् यज्ञः।"[11]
'अध्वर', 'क्रतु' एवं 'मख' शब्द यज्ञ के पर्यायवाची शब्द हैं, यज्ञ एकमात्र कर्मकाण्ड ही नहीं है, बल्कि इसे समस्त ब्रह्माण्ड में मूलभूत सिद्धान्त के रूप में माना गया है। विश्व की प्रायः समस्त प्राचीन संस्कृतियों में 'यज्ञ' का उल्लेख मिलता है।

यज्ञ का स्वरूप

यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का शाश्वत श्रेष्ठकर्म है। यह सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान-विज्ञानों का आधार है। इसकी महिमा से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय परिपूर्ण है। संक्षिप्त रूप से यज्ञ की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं कि- विश्वकल्याण के लिए किया गया प्रत्येक निःस्वार्थ कर्म यज्ञ है। इसका आधार वेद में उल्लिखित है- 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।'[12] जैसे नाभि सम्पूर्ण शरीर को बाँधती है, एकीकृत करके धारण करती है वैसे ही यह यज्ञ भी सम्पूर्ण संसार का केन्द्र बिन्दु है। एक अणु से लेकर वृक्ष, वनस्पति, मानव-शरीर, परिवार, समाज, राष्ट्र व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए यज्ञ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना क्षणमात्र भी विश्व का अस्तित्व सम्भव नहीं है। यदि सूर्य निःस्वार्थ भाव से शक्ति और प्रकाश न दें, वायु प्राणशक्ति प्रदान न करें, सभी वृक्ष वनस्पति निःस्वार्थ सेवा का त्याग कर दें, यदि माता-पिता गुरुजन अबोध शिशु के प्रति स्नेह भाव त्याग दें तब क्या हम क्षणमात्र के लिए भी जीवन या संसार के अस्तित्व की कल्पना कर सकते हैं? कदाचित् ये सम्भव नहीं है। वेद में भी कहा गया है-

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।।[13]
जो मनुष्य अपने जीवन में अपने आचरण में यज्ञ को धारण करता है वह इस संसार में सुख और आनन्द को प्राप्त करता है। इसी तथ्य के आधार पर ऋषि, मुनि प्रत्येक मानव जीवन का अनिवार्य कर्त्तव्य या धर्म यज्ञ को मानते हैं। श्रीकृष्ण भी गीता में इसी रहस्य को उजागर करते हुए कहते हैं कि-

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः।।[14]
यज्ञ न करने वाला व्यक्ति इस संसार में सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

आयुर्यज्ञेनकल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताम्[15]
हम यज्ञ के द्वारा चिरायु, सुस्वास्थ्य, विविध रोगों से निवृत्ति, कृषि, पुष्प, फल आदि की वृद्धि तथा सभी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति कर सकते हैं।

यज्ञ की उपयोगिता

यज्ञ सत्य पर प्रतिष्ठित है। यज्ञ वैदिक जीवन एवं वैदिक साहित्य का अविभाज्य अंग है। वैदिक ऋषियों की सम्पूर्ण जीवन-चर्चा यज्ञ कर्म से अनुप्राणित थी इसलिये यज्ञमय जीवन की अपनी विशिष्ट संस्कृति रही है। वेदों में यज्ञ की उपयोगिता पर अत्यधिक वर्णन प्राप्त होता है। संक्षेप में यज्ञ की उपयोगिता के विषय में हम कह सकते हैं-

1. यज्ञ प्रकृति के सन्तुलन को बनाए रखने में बहुत सहायक होता है।
2. यज्ञ की सामग्री में प्रयुक्त तिल, अखरोट, मखाने, जौ, चावल, चीनी, घृत, सूखे मेवा तथा वनों से प्राप्त विभिन्न औषधियाँ आदि पदार्थों में वायु को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति है। इसके धुएँ से क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियों के कीटाणु नष्ट होते हैं।
3. यज्ञ से म्जीलसमदम वगपकमए चतवचीलसमदम गैसे निकलती हैं, जो वातावरण को शुद्ध करती हैं और प्रदूषण को नष्ट करती हैं।
4. यह शिवसंकल्प, विचार-शुद्धि, सद्भाव, शान्ति और निरोगता प्रदान करके मानसिक और बौद्धिक रोगों को दूर करता है।

अथर्ववेद में यज्ञ-चिकित्सा

अथर्ववेद में विद्युत्, सूर्य, वायु, जल, मिट्टी आदि चिकित्साओं के साथ-साथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठ और सुलभ यज्ञ-चिकित्सा का भी वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें अग्नि को चिकित्सक की संज्ञा प्राप्त है।[16] अथर्ववेद में यज्ञाग्नि द्वारा ज्वर, गण्डमाला, क्षय, कुष्ठादिरोग, श्वास, राजयक्ष्मा, गर्भदोष, गर्भधारण, उन्माद, भूतोन्माद प्रभृति अनेक रोगों की सफल चिकित्सा का वर्णन मिलता है।

यज्ञ द्वारा ज्वर-चिकित्सा - मानव शरीर के समस्त रोगों में ज्वर रोग प्रधान है। 'चरक-संहिता' में ज्वर को रोगों का अधिपति कहा गया है।[17] अथर्ववेद में वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के वैषम्य को ज्वरादि रोगों का प्रथम कारण माना गया है।[18] ऋतुओं तथा शोक, मोहादि मानसिक विकारों को भी इनका कारण स्वीकार किया गया है।[19]
'अथर्ववेद' में ज्वर तथा कास, शिरोवेदना, अंगों का टूटना आदि का निदान यज्ञाग्नि द्वारा बताया गया है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में अंग-अंग में तापसहित व्याप्त ज्वर का प्रतिकार हवि द्वारा करने का संकेत है।[20] अथर्ववेद में यज्ञाग्नि से प्रार्थना करते हुए सोम-रस, बलदाता सूर्य, यज्ञवेदी कुश और प्रज्वलित समिधाओं से रुग्ण शरीर में विद्यमान ज्वर-जन्य उपद्रवों को दूर करने की कामना की गई है।[21]

यज्ञ द्वारा गण्डमाला-चिकित्सा - गले में उत्पन्न व्रण या ग्रन्थि को गण्डमाला कहा जाता है। अथर्ववेद में इसकी चिकित्सा का वर्णन करते हुए सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से सेवन तथा यज्ञाग्नि में आहुति द्वारा इन्हें दूर करने का उल्लेख है। यदि गण्डमाला का रोगी मनोयोग से यज्ञाग्नि में डाली गई आहुति का सेवन करे तो वह ग्रन्थियों से मुक्त हो जाएगा। अथर्ववेद में लाल वर्ण वाली गण्डमाला का उपचार मुनिदेव नामक वृक्ष विशेष के जड़ से निर्मित शर के द्वारा करने का वर्णन है।[22]

यज्ञ द्वारा क्षय एवं कुष्ठरोग-चिकित्सा - अथर्ववेद के तृतीय काण्ड में क्षय, कुष्ठ आदि रोगों अथवा वंशपरम्परा से प्राप्त क्षेत्रिय-रोगों की चिकित्सा का उल्लेख किया गया है। यहाँ मृगश्रृंग को जल में घिस

कर या उसकी भस्म को जल के साथ मिश्रित कर प्रातःकाल उसके पान करने अथवा स्नान करने से इन रोगों का उपचार बताया गया है। तथा सूर्य की रश्मियों का सेवन और रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी का सेवन भी इसके लिए हितकर माना गया है।[23]

यज्ञ द्वारा राजयक्ष्मा-चिकित्सा - राजयक्ष्मा या क्षयरोग (तपेदिक) के कीड़े सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हैं। अतः यज्ञ से श्रेष्ठ, शीघ्र और प्रभावकारी दूसरी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती, क्योंकि यज्ञीय गैस श्वास तथा रोमकूपों में प्रवेशकर अन्य औषधियों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होती है। 'अथर्ववेद में इसकी चिकित्सा का वर्णन है। एक मन्त्र में यज्ञीय हवि से पसलियों को तोड़ने वाले, फेफड़ों में स्थित पृष्ठवंश के उपरिभाग में स्थिर रहने वाले सभी प्रकार के तपेदिक रोग को शरीर से बाहर निकालने का उल्लेख है।'[24]

यज्ञ द्वारा गर्भधारण-चिकित्सा - गर्भधारण चिकित्सा के अन्तर्गत वन्ध्यत्व या बाँझपन और नपुंसकता दोनों की चिकित्सा की जाती है। स्त्री के वन्ध्यत्व और पुरुष की नपुंसकता को दूर करके दोनों में गर्भधारण करने तथा करवाने की क्षमता के लिए अथर्ववेद में उल्लेख है-

शमीमश्वत्थ आरुढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि।।[25]

शमी वृक्ष पर उगे हुए पीपल वृक्ष में पुंसवन किया गया है। अतः निश्चय ही वह पुत्र प्राप्ति का साधन है और उसे स्त्रियों के निमित्त लाया जाता है।

शमी पर जब अश्वत्थ आरूढ़ होता है, तो पुंसवन किया जाता है। इससे पुत्र प्राप्ति का योग बनता है। उस प्रभाव को हम स्त्रियों में भर देते हैं।

इस मन्त्र के अर्थ को इस प्रकार समझने का प्रयास कर सकते हैं- शमी के वृक्ष पर पीपल जमे, तो उससे औषधि-योग बनाकर, स्त्री को देने से पुत्रोत्पत्ति का योग बनने का यहाँ संकेत मिलता है, द्वितीय अर्थ यह निकलता है कि अश्वरूप (सशक्त) नर-शुक्र, जब सौम्य नारी-रज से संयुक्त होता है, तब पुत्र का योग बनता है। इस अनुकूलता को औषधियों तथा मन्त्रोपचार द्वारा नारी में स्थापित करने का भाव भी यहाँ ग्राह्य है।[26]

इसके अतिरिक्त यज्ञ द्वारा श्वासरोग, गर्भदोष, उन्माद, भूतोन्माद आदि रोगों का निदान किया जाता है।

अतः अथर्ववेद में उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आधुनिक चिकित्साओं के साथ-साथ यज्ञीय चिकित्सा-विज्ञान भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है, जिसके द्वारा रोगों को नष्ट करने वाली औषधियों एवं वातावरण शोधक जड़ी-बूटियों को अग्नि में आहूतकर धूम और गैस के माध्यम से रोग-क्रिमियों को विनष्ट किया जा सकता है।

यज्ञ से स्वास्थ्य रक्षा

यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है। इसके तीन अर्थ हैं- देव- पूजा, संगतिकरण और दान।[27] दान शब्द का अर्थ आचार्य यास्क ने 'देवो दानाद्वा'[28] किया है, जिसका अभिप्राय एक का दान आदान के लिये है, दूसरे का आदान दान के लिए है।

"आदानं हि विसर्गाय" जहाँ देकर लेने की भावना हो। इस दानादान के माध्यम का ही नाम हवि है। हवि का अर्थ है जिसे दिया जाता है लेने के लिए तथा जिसे लिया जाता है देने के लिये। इसी हवि का हवन अवलम्बित है।[29]

अग्नि के माध्यम से चिकित्सा कार्य में यज्ञ की पद्धति अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसमें अग्नि, सूर्य रश्मि, ध्वनि, औषधियुक्त वात, औषधियुक्त रसादि का शरीर में श्वास-प्रश्वास क्रिया द्वारा, वात के स्पर्श द्वारा, ताप द्वारा तथा श्वास मार्ग से शरीर के अन्दर ग्रहणादि के द्वारा क्रियायें सिद्ध होती हैं जिससे आरोग्य प्राप्त होता है। यजुर्वेद में कहा गया है कि- "हे अग्ने! तू सूर्य की दीप्ति से संगत हो और मन्त्र स्तुति तथा प्रिय तेज से संयुक्त हो जिससे मैं आयु, वर्चस, प्रज्ञा एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करूँ। यज्ञाग्नि का संयोग सूर्य-रश्मि से होने तथा दोनों का मन्त्र की ध्वनि में संयोग होने से तथा इन तीनों का तेज से संयोग व मिश्रण होने से उसके द्वारा आयु की प्राप्ति होती है, प्रज्ञा की और ऐश्वर्य की भी प्राप्ति होती है।[30]

जब हम यज्ञाग्नि में घी, अन्न, औषधि आदि की आहुति देते हैं तो इनकी रोग नाशक गन्ध वायु मण्डल में फैल जाती है। उस वायु को हम श्वास द्वारा अपने फेफड़ों में लेते हैं। वहाँ पर वायु का रक्त से सीधा सम्पर्क होता है वह वायु अपने में विद्यमान रोग निवारक परमाणुओं को रक्त में पहुँचा देती है। उससे रक्त में जो रोग कृमि होते हैं, वे मर जाते हैं। रक्त के अनेक दोष वायु में आ जाते हैं और जब हम वायु को बाहर निकालते हैं, तब उसके साथ वे दोष भी हमारे शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ द्वारा शुद्ध वायु में बार-बार श्वास लेने से रोगी धीरे-धीरे स्वस्थ हो जाता है।

प्राचीन काल में रोग फैलने के समय पर बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते थे और जनता उससे आरोग्य लाभ प्राप्त करती थी। इन्हें भैषज्य यज्ञ कहते थे। अग्नि में डाली गई आहुति रोग कृमियों को उसी प्रकार दूर बहा ले जाती है। जिस प्रकार नदी पानी के झागों को ले जाती है। हे अग्नि! गुप्त से गुप्त स्थानों में छिपे हुये भक्षक रोग कृमियों के जन्मों को जानता है वेद मन्त्रों के साथ बढ़ता हुआ तू उन रोग कृमियों को नष्ट कर दे और इनसे होने वाली सैकड़ों हानियों को दूर कर दे।[31]

शरीर में व्याप्त ज्वर का नाश[32], उन्मत्त पुरुष को सुनियन्त्रित करना[33], गण्डमाला की ग्रन्थियों को उखाड़ कर दूर करना[34], गर्भ के दोष[35] आदि रोगों का उपाय यज्ञाग्नि द्वारा संभव है।

प्रातः सायं दोनों समय यज्ञ करने से बल, सौभाग्य, उत्तम सन्तान और आरोग्य एवं अन्य भी सहस्रों दीर्घायुष्य आदि लाभ होते हैं[36], जिससे जीवन आनन्दमय हो जाता है और घरों का भी उद्धार हो जाता है।

यज्ञ से प्रदूषण समाधान तथा आयुर्वृद्धि

यज्ञ ही वह विधि है, जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है। यज्ञ के द्वारा ही पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमण्डल की पवित्रता, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा रोग-निवारण के कारण दीर्घायु की प्राप्ति होती है। यज्ञ के द्वारा ही भू-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण को दूर किया जा सकता है। वातावरण

के स्वच्छ होने पर मनुष्य रोग पीड़ित नहीं होगा और वह स्वतः दीर्घायु को प्राप्त करेगा।

यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया बताई गई है, जिसके द्वारा वायुमण्डल में ऑक्सीजन (ठ) और कार्बनडाई-आक्साइड ($ब्ब_2$) का सन्तुलन बना रहता है। प्रकृति में एक चक्र की व्यवस्था है, जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ अपने मूल स्थान पर पहुँचता है। इसी के आधार पर ऋतु-चक्र, वर्ष-चक्र, अहोरात्र-चक्र, सौर-चक्र, चान्द्र-चक्र आदि प्रवर्तित होते हैं। इस प्राकृतिक चक्र को ही पारिभाषिक शब्दावली में यज्ञ कहा गया है। अतः यह प्राकृतिक यज्ञ विश्व में प्रतिक्षण चल रहा है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में इस प्राकृतिक यज्ञ में बसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा है और शरद् ऋतु हव्य। बसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु, ग्रीष्म के बाद वर्षा और वर्षा के बाद शरद् ऋतु और शरद् ऋतु के बाद बसन्त ऋतु। इस प्रकार यह वर्ष-चक्र पूरा होता है।[37]

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।।[38]

यह प्रक्रिया अणु, परमाणु से लेकर सूर्य, चन्द्र आदि तक सर्वत्र चल रही है। इसी का नाम यज्ञ-प्रक्रिया है। इसके द्वारा ही सृष्टि के प्रत्येक कण में नित्य परिवर्तन हो रहा है और सृष्टि-चक्र चल रहा है। अतएव यजुर्वेद में कहा गया है कि यह यज्ञ सृष्टि-चक्र का केन्द्र है।

अथं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।[39]

ऋग्वेद में इस प्रक्रिया को इस प्रकार वर्णित किया गया है कि यज्ञ के द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथिवी को तृप्त करता है। क्योंकि यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति, दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।[40]

गीता में वर्णित है कि यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करो और देवता वर्षा के द्वारा तुम्हें प्रसन्न करें। इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान से तुम्हारी श्री वृद्धि हो।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।[41]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ करने से विविध रोगों का नाश होगा और वातावरण भी शुद्ध होगा जिससे मनुष्य रोगों से मुक्त रहते हुये दीर्घायु को प्राप्त करेगा।

मन्त्रों द्वारा आयुर्वृद्धि की प्रार्थना

प्रत्येक प्राणी की स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसका अस्तित्व बना रहे वह चिरञ्जीवी हो, उसका जीवन लम्बा हो, उसी प्रकार वेदादि शास्त्रों में भी इस बात के बहुत संकेत मिलते हैं कि मनुष्यों को समुचित आहार-व्यवहार और सदाचार के पालन से अपने को अधिक से अधिक स्वस्थ रखना चाहिए, जिससे कि उसका जीवन सुखी रहे, उसकी आयु लम्बी हो और वह सौ वर्ष से पूर्व मृत्यु को प्राप्त न हो। एतदर्थ आयु-वर्धक अथवा स्वास्थ्य-वर्धक औषधियों का सेवन करते हैं और आयु को सुदीर्घ करने वाले मन्त्रों से यज्ञ में आहुति देकर दीर्घायु की प्रार्थना करते हैं।

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम्।
अदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्।[42]

"हम सौ वर्ष तक देखें। हम सौ वर्ष तक जिये, हम सौ वर्ष तक सुनें, हम सौ वर्ष तक भली-भाँति बोलें, हम सौ वर्ष तक अदीन बने रहें, हम सौ वर्ष से भी अधिक समय तक सभी कार्यों को करते रहें।

जीवेम शरदः शतम्,
बुध्येम शरदः शतम्।।
रोहेम शरदः शतम्,
पूषेम शरदः शतम्।
भवेम शरदः शतम्,
भयेम शरदः शतम्।।
भूयसीः शरदः शतात्।।[43]

"हम सौ और सौ से अधिक वर्षों तक जीवित रहें, अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाते रहें, उत्तरोत्तर उत्कृष्ट उन्नति की प्राप्ति करते रहें, पुष्टि और दृढ़ता को प्राप्त करते रहें, आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहें और समृद्धि, ऐश्वर्य तथा गुणों से अपने को भूषित करते रहें।"

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।[44]

"हे देवताओं! आपने सौ वर्ष के आस-पास ही, हमारे तनों का बुढ़ापा बनाया है। तब तक हमारे पुत्र भी पिता हो चुकते हैं। हमारा जीवन इसी प्रकार चले। बीच में ही यह टूट न जाये।"

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि।[45]

अपने मन की सम्पूर्ण शक्ति रोग निवृत्ति में ही विश्वास से लगाई जावे। कोई मनुष्य यम दूतों के वश में न जावे और इस शरीर में अर्थात् जीवात्मा की नगरी में दीर्घकाल तक रहे।

अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः।[46]

हम शरीर से नीरोग हो और उत्तम वीर हो।

दीर्घ त आयुः सविता कृणोतु।[47]

'सर्वोत्पादक परमेश्वर तेरी आयु दीर्घ करें।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि मनुष्य यज्ञ विधि-विधानों को अपने जीवन में अपना ले तो वह निरोग रहते हुए सुखी जीवन व्यतीत करेगा। जिस घर में प्रतिदिन यज्ञ होता है उस घर में कभी रोग प्रवेश

नहीं करते। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन यज्ञ करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थाः

1. अष्टा. 3.3.90
2. अष्टा. 3.3.113
3. नि. 3.4.19
4. देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
   ऋत्विजां दक्षिणां च संयोगो यज्ञ उच्यते।। म. पु. 144.44
5. यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म। श. ब्र. 1.7.1.5
6. उद्दिश्य देवतां द्रव्यत्यागो यागोऽभिधीयते। सायण भाष्य, ऐ. ब्रा., 1. 1.7, पृ. 7
7. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रथम समुल्लास, पृ. 14
8. सत्यार्थ प्रकाश, पृ. 28
9. आर्योद्देश्यरत्नमाला (रत्न-47), स्वामी दयानन्द सरस्वती
10. श. ब्रा. 1.7.1.5
11. नि. 13-3.9
12. यजु. 26.62
13. अथर्व. 12.1.1
14. गीता 4.31
15. यजु. 18.29
16. अग्निष्कृणोतु भेषजम्। अथर्व. 6.106.3
17. इह तु ज्वर सवादौ। विकरानामुपदिश्यते तत्प्रथमत्वाच्छरीराणाम्। स रोगाधिपतिः। च. सं., निदानस्थान 1.31
18. यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च। अथर्व. 1.12.03
19. यदि शोको ..... परिवृङ्ग्धि तक्मन्। अथर्व. 1.25.3
20. अङ्गे अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणम् नमस्यन्तस्तवा हविषा विधेम। अथर्व. 1.12.2
21. अग्निस्तक्मानमपबाधातामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः।
    वेदिर्बहिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु।। अथर्व. 5. 22.1
22. वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि। अथर्व. 6.83.4
23. (क) हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।
    स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत्।। अथर्व. 3.7.1
    (ख) अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः।
    तना ते सर्व क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि।। अथर्व. 3.7.3
    (ग) यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे।
    वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत्।। अथर्व. 3.7.6
24. यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति।
    निर्हास्तं सर्वं जयान्यं यः कश्च ककुदिश्रितः।। अथर्व. 7.76.3
25. अथर्व. 6.11.1
26. अथर्ववेद-संहिता (सरल हिन्दी भावार्थ) भाग-1, सम्पा. पं. श्री राम शर्मा आचार्य एवं भगवती देवी शर्मा
27. धातु पाठ भ्वादि गण धातु सं. 724
28. देवो द्वानाद्वा, दीपनाद्वा द्योतनादा, द्युस्थानो भवतीति वा। नि. 7.15
29. अग्निहोत्र सर्वस्व - दीक्षानन्द सरस्वती, पृ. 21
30. सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणां स्ततेन।
    सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा संवर्च्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेणग्मिषीय।। यजु. 3.19
31. इदं हविर्यातुधानान् नदी..... फेनमिवावहत्.। अथर्व. 1.8.1, 4
32. अङ्गे-अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम।
    अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत पर्वास्या ग्रभीता।। अथर्व. 1.12.2
33. इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति।
    अतोऽधि ते कृणवद् भगधेयं यदानुन्मदितोऽसति।। अथर्व. 6.111.1
34. (क) अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव।
    सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु।।
    (ख) एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे।
    सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन।।
    (ग) असूतिका रामायण्य पचित् प्र पतिष्यति।
    ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति।।
    (घ) वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा।
    यदिदं जुहोमि।। अथर्व. 6.83.1-4
35. (क) ब्रह्मणाग्नि संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
    अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये।।
    (ख) यस्ते गर्भममीषा दुर्णामा योनिमाशये।
    अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्।। अथर्व. 20.96.11-12
36. यो यस्मा अन्नं तृष्वाऽदधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति।
37. तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्रे विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वं।। ऋ. 10. 79.5
38. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 309
39. ऋ. 10.90.6, यजु. 31.14
40. यजु. 26.62
41. ऋ. 1.164.51
42. गीता 3.11
43. ऋ. 7.66.16, यजु. 36.24
44. अथर्व. 19.67.2-8
45. यजु. 25.22
46. अथर्व. 5.30.6
47. अथर्व. 5.3.5
48. वही, 14.1.47